International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2025; 7(2): 24-27
Received: 20-11-2024
Accepted: 26-12-2024

डॉ. विनोद यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग राजकीय महाविद्यालय मंगरौरा, प्रतापगढ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विनोद यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग राजकीय महाविद्यालय मंगरौरा, प्रतापगढ, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रातिनूतन कालीन पुरापर्यावरण एवं मानव अधिवास

विनोद यादव

सारांश
मानव की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से प्रातिनूतन काल का विशेष महत्व है। इसी काल से विश्व में सर्वप्रथम आदिमानव के अवशेष मिले हैं। इस कारण इस काल को 'मानव काल' भी कहा जाता है। किन्तु जहाँ तक मानव के विकास का प्रश्न है, उसकी उत्पत्ति निश्चित रूप से प्रातिनूतन काल के पहले हो चुकी रही होगी, क्योंकि उसके शारीरिक तथा अशारीरिक अवशेष प्रातिनूतन काल के प्राथमिक स्तरों से ही मिलने लगते हैं। मानवेत्तर स्थिति से विकसित होकर मानवसम (Homonid) तथा मानव (होमो सेपियन्स सेपियन्स) बनने में उसे हजारों वर्ष का समय लगा होगा। चूँकि मानव का विकास बहुत धीरे–धीरे हुआ, अतः यह बता पाना कि किस समय उसने मानवेत्तर स्थिति से मानव की स्थिति में प्रवेश पा लिया, सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में अफ्रीका के 'ओल्डुआई गार्ज' का साक्ष्य विशेष महत्वपूर्ण है। भूतत्व विज्ञान के अन्तर्गत प्रातिनूतन काल को 'नवीनतम काल' का दर्जा प्राप्त है। पूर्ववर्ती अन्य कालों की अपेक्षा इसका समय अत्यंत कम है, परन्तु आधुनिक मानव (होमो सेपियन्स सेपियन्स) से सम्बद्ध होने के कारण इस काल का विशेष महत्व है।

कुटशब्दः होमो सेपियन्स सेपियन्स, सोनघाटी, बेलन घाटी, नर्मदा घाटी, उच्च पुरापाषाण काल

प्रस्तावना
प्रातिनूतन काल पृथ्वी एवं मानव के विकास के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए भी विशेष महत्वपूर्ण है। वर्तमान जलवायु की तुलना में प्रातिनूतन काल की जलवायु अत्यंत विषम थी। यह जलवायु सम्बन्धी अस्थिरता का युग था।[1] जलवायु के तीव्र उतार–चढ़ाव का अत्यधिक प्रभाव पृथ्वी के ऊपरी धरातल के बनावट में तथा जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं के प्रसार पर भी पड़ा। आदिमानव का जीवन प्रकृति पर विशेष रूप से निर्भर था, इसलिए इन जलवायु परिवर्तनों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव मानव के विकास पर भी अवश्य पड़ा होगा।

पृथ्वी के विकास के इतिहास में कई ऐसे काल आये जब भूमि के अनेक भाग हिम से ढके हुए थे। प्रातिनूतन काल में उत्तरी गोलार्द्ध के अनेक भाग हिमाच्छादित थे। लुई अगासीज ने सन् 1840 में ही इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि हमारी पृथ्वी वर्तमान समय की अपेक्षा पूर्व में हिम से ज्यादा प्रभावित हुई थी। आज सभी इस बात से सहमत हैं कि पृथ्वी अनेक हिमयुगों से गुजर चुकी है। प्रातिनूतन काल के पहले भी कई 'कल्पों' एवं 'कालों' में हिमायन के संकेत मिले हैं। पर्मोकार्बनीफेरस का हिमकाल अपेक्षाकृत अधिक सुविदित है, लेकिन प्रातिनूतन काल में हिमायन के कई दौर आये और गए। प्रातिनूतन काल की जलवायु की सबसे प्रमुख विशेषता इसी हिमायन को माना जाता है। भारत में हिमायन का अध्ययन डी टेरा तथा टी.टी. पेटरसॅन[2] आदि विद्वानों ने किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व हिमायनों के सम्बन्ध में प्रायः कुछ भी ज्ञात नहीं था। 19वीं शताब्दी से इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने कार्य करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम एक स्विस अभियन्ता जे. बेनेज का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ। किन्तु हिमायन के सिद्धान्त को वास्तविक रूप से विश्व के सामने प्रस्तुत करने में सबसे अधिक योगदान शार्पेण्टियर तथा अगासिज का है। शार्पेण्टियर की प्रेरणा से अगासिज ने बताया कि निकट भूतकाल में पृथ्वी का धरातल हिमनदियों से आच्छादित था। यूरोप में हिमायनों का अध्ययन ओ. टौरेल ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में किया था, लेकिन उन्हें अन्तर्हिम काल का ज्ञान नहीं था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान मार्लो के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। अपने अनुसंधानों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि प्रातिनूतन काल में पृथ्वी पर निश्चित रूप से एक से अधिक हिमयुग हुए हैं। उनके अनुसार तीन हिमकाल और उनके बीच होने वाले दो अन्तर्हिमकाल हुए थे। किन्तु जेम्स गीकी ने प्रातिनूतन काल में ही छः कालों और उनके बीच पाँच अन्तर्हिमकालों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ए. पेंक तथा ई. ब्रकनर द्वारा किए गए अनुसंधान कार्य प्रातिनूतन कालीन भूतत्व के दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण है। उन्हें प्रातिनूतन काल में आल्पीय प्रदेश में चार हिमकालों तथा तीन अन्तर्हिमकालों के होने के स्तरीय प्रमाण मिले। इन विद्वानों द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त केवल यूरोप के ही सन्दर्भ में ही नहीं, अपितु विश्व में प्रायः जहाँ कहीं भी हिमायन हुए हैं, उन सभी स्थानों के लिए सही माना जाता है। प्रातिनूतन काल के हिमायनों पर अमेरिका में हुए कार्य भी उल्लेखनीय हैं।

यहाँ पर भी यूरोप के समान चार हिमकाल एवं तीन अन्तर्हिमकाल के संकेत मिले हैं।

इस प्रकार यूरोप, अमेरिका तथा विश्व के विभिन्न प्रदेशों में हिमायनों के क्रमिक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी स्थानों पर हिमकालों तथा अन्तर्हिम कालों का क्रम वास्तव में एक ही प्रकार का था और इस प्रकार सभी समसामयिक भी थे।

जिस समय विश्व के अनेक क्षेत्रों में हिमकाल तथा अन्तर्हिमकाल घटित हो रहा था, उसी समय अन्य क्षेत्रों में वर्षाकाल तथा अन्तर्वर्षा काल घटित हो रहा था। इसी प्रकार की जलवायु उष्ण कटिबन्धों में थी। दक्षिणी भारत में इसी प्रकार के वर्षाकालों तथा अन्तर्वर्षा कालों के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। वर्षाकाल में अत्यधिक वर्षा के प्रमाण मिलते हैं, जिससे वृहत् नदियों और विस्तृत झीलों का निर्माण होता है, जबकि अन्तर्वर्षा काल अपेक्षाकृत शुष्क काल था, इसमें धरातल के तापमान में वृद्धि और आद्रता न्यून हो जाती थी। फलतः वृहत नदियाँ कृषकाय तथा विस्तृत झीलें संकुचित होने लगती थी।[3] इसी प्रकार जब धरातल के औसत तापमान में अधिकता तथा आर्द्रता में न्यूनता आ जाती है, तब उसका परिणाम संसार के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होगा। स्थानीय विशेषताओं ने भी स्थान–स्थान पर जलवायु को प्रभावित किया होगा। प्रातिनूतन काल में हो रहे इन जलवायु परिवर्तनों का प्रभाव सोन एवं बेलन नदी घाटियों में निवासरत जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों पर अवश्य पड़ा होगा।

प्रातिनूतन कालीन जलवायु के सन्दर्भ में बर्किट तथा कामियाडे[4] द्वारा दक्षिण भारत में किए गए कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अनुसार दक्षिण भारत में प्रातिनूतन काल में जलवायु सम्बन्धी सात परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन का प्रारम्भ आर्द्र काल से होता है। कुल मिलाकर यहाँ पर चार वर्षाकाल और उनके बीच में तीन शुष्क काल अथवा अन्तर्वर्षा काल हुए। यहाँ पर भी साधारणतः उत्तर के हिमकालों को दक्षिण के अन्तर्वर्षा कालों के समकालीन माना जा सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन के द्वारा उत्तर मध्य भारत की प्रातिनूतन कालीन जलवायु के बारे में स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है।

प्रातिनूतन काल की विषम जलवायु के परिणाम स्वरूप पृथ्वी के ऊपरी धरातल पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। हिमाच्छादित क्षेत्रों में पृथ्वी के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में हिमायनों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। प्रातिनूतन काल के हिमकालों के कारण महासागरों एवं सागरों के जल–स्तर में गिरावट तथ अन्तर्हिमकालों में जल–स्तरों में अत्यधिक वृद्धि होती रही होगी।[5] इससे स्पष्ट है कि समुद्र के जल–स्तर में उतार–चढ़ाव का सीधा सम्बन्ध प्रातिनूतन काल के हिमयुगों से है। इसके अतिरिक्त प्रातिनूतन काल के हिम एवं अन्तर्हिमकालों की जलवायु एवं वनस्पति के प्राकृतिक प्रदेशों की स्थिति में इस दौरान परिवर्तन होते रहते थे।

इस प्रकार प्रातिनूतन काल में हो रहे जलवायु परिवर्तनों का विशेष प्रभाव मानव के विकास पर अवश्य पड़ा होगा। आदिमानव के ऊपर इस प्रकार की जलवायु के प्रभाव का अनुमान ऐसी स्थिति में अधिक तर्कसंगत ढंग से लगाया जा सकता है, जबकि हमें यह पता है कि तत्कालीन मानव अपने जीवन–यापन के लिए पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं पर ही पूर्णतः निर्भर था। तत्कालीन मानव के पुरापर्यावरण के अध्ययन का महत्व विशेष रूप से दो दृष्टियों से है:

1. इससे हमें इसका संकेत मिलता है कि त्तकालीन मानव को किस प्रकार की जलवायु सम्बन्धी चुनौती का सामना करना पड़ा।
2. इससे प्रागैतिहासिक काल के अध्ययन के लिए प्राकृतिक काल–क्रम की एक व्यापक रूप रेखा प्राप्त होती है।

प्रातिनूतन काल के तिथि निर्धारण के लिए स्तरीकरण एवं जीवाश्मों के प्रमाणों को मुख्य आधार बनाया गया है। इसके अलावा निरपेक्ष तिथि निर्धारण विधियों से भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त की जा सकती है। स्तरीकरण एवं जीवाश्मों के आधार पर प्रातिनूतन काल को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है[6], जो निम्नलिखित है:

1. आरम्भिक प्रातिनूतन काल (Lower Pleistocene)
2. मध्य प्रातिनूतन काल (Middle Pleistocene)
3. उच्च प्रातिनूतन काल (Upper Pleistocene)

प्रातिनूतन कालीन जलवायु के क्रम में आरम्भिक प्रातिनूतन काल प्रथम दीर्घ वर्षा काल तथा प्रथम शुष्क काल के लिए जाना जाता है। मध्य प्रातिनूतन काल में द्वितीय वर्षा काल का प्रारम्भ होता है तथा इसकी समाप्ति द्वितीय शुष्क काल के अंत के साथ होती है। उच्च प्रातिनूतन काल में पुनः इस काल का तीसरा वर्षा काल आरम्भ होता है और इसकी समाप्ति शुष्क काल के द्वारा होती है। इस प्रकार प्रातिनूतन काल में तीन आर्द्र काल तथा तीन शुष्क काल हुए। सातवाँ काल नूतन काल का है।

निरपेक्ष तिथि–क्रम विधियों के आधार पर प्रातिनूतन काल के काल निर्धारण का प्रयास उल्लेखनीय है। इस सन्दर्भ में सोनघाटी के जलोढ़ जमावों से प्रातिनूतन से नूतन काल तक की कुछ रेडियोकार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं।[7] मध्य सोन घाटी से प्राप्त चारों जमावों के लिए क्लार्क महोदय ने रेडियों कार्बन तिथियों के आधार पर तिथि निर्धारण किया है, जिसका विवरण निम्नलिखित है:[8]

1. सिहावल जमाव (अन्त मध्य से प्रारम्भिक उच्च प्रातिनूनत काल) (लगभग 100,000 बी.पी. तक)
2. पटपरा जमाव (उच्च प्रातिनूतन काल) (100,000–30,000 बी. पी. तक)
3. बघोर जमाव
    - रूक्ष वर्ग (अन्त प्रातिनूतन काल) (30000–12000 बी.पी. तक)
    - महीन वर्ग (अन्त प्रातिनूतन काल एवं प्रारम्भिक से मध्य नूतन काल) (12000–10000 बी.पी. तक)
4. खेतौंही जमाव (लगभग मध्य नूतन काल)

इस प्रकार प्रातिनूतन कालीन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों एवं स्तरीकरण के साक्ष्य स्पष्ट रूप से सोनघाटी एवं बेलन घाटी के जलोढ़ जमावों में देखने को मिलते हैं। प्रारम्भिक सिहावल जमाव से निम्न पूर्व पाषाण काल के उपकरण, पटपरा जमाव से गहरी लाल एवं भूरी मिट्टी जमाव, ग्रैवेल , बालू एवं मध्य पूर्व पाषाण काल के उपकरण, बघोर जमाव से रूक्ष एवं महीन वर्ग के जमाव, सिल्ट एवं उच्च पूर्व पाषाण काल एवं मध्य पाषाण काल के उपकरण मिले हैं। अतः स्पष्ट है कि उत्तर–मध्य भारत का 'आधुनिक मानव' सोन एवं बेलन नदी घाटियों में उच्च प्रातिनूतन कालीन जलवायु में विचरण कर रहा था।

तालिका 1: प्रातिनूतन काल के उपविभाग

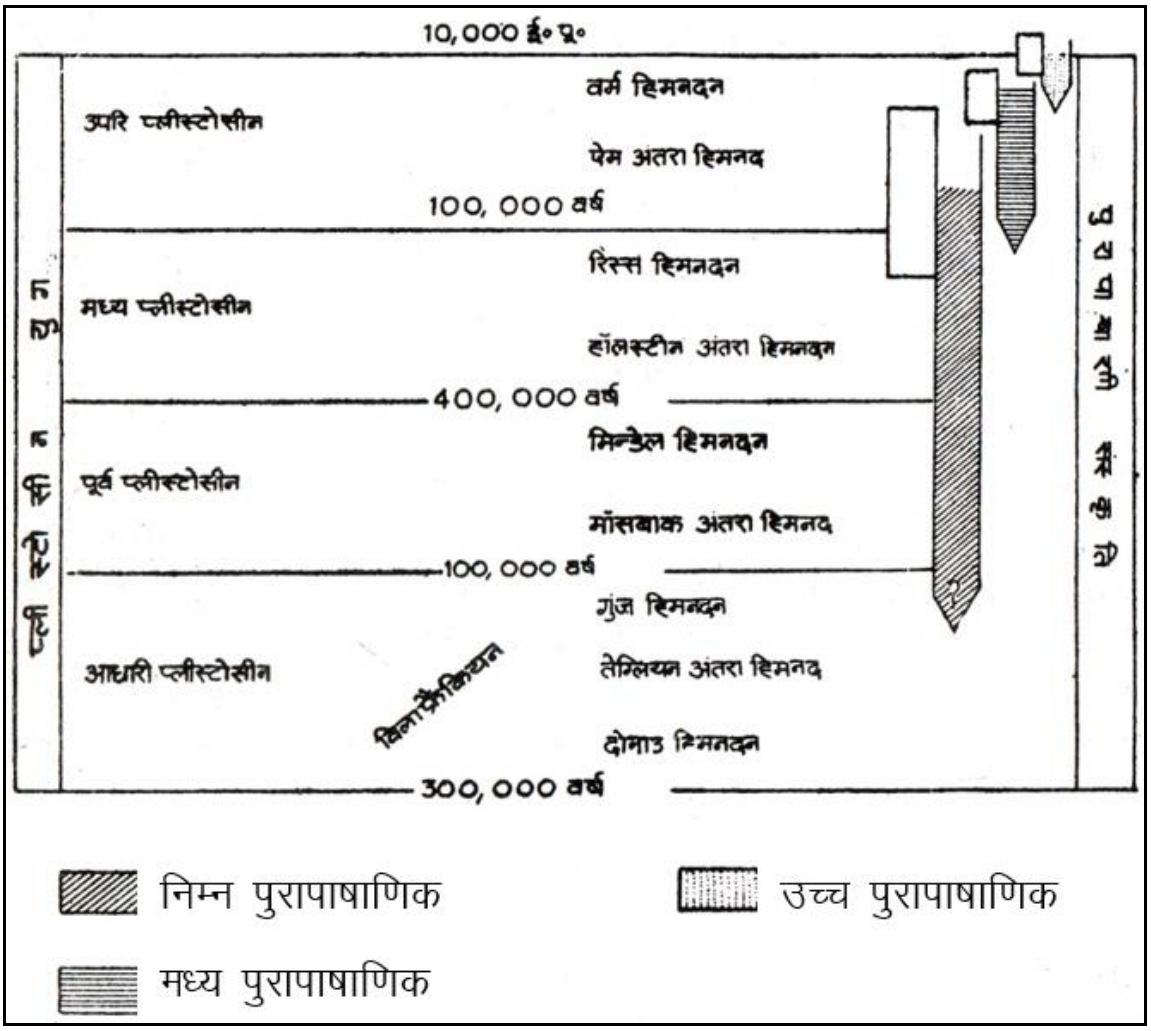

विन्ध्य क्षेत्र के भूतात्विक स्तर एवं पुरातात्विक सामग्री के अध्ययन हेतु लैटेराइट के निर्माण तथा तिथि का बोध होना बहुत आवश्यक है। प्रारम्भिक प्रातिनूतन काल अथवा प्रथम आर्द्र काल में लैटेराइट का निर्माण हुआ था।[9] यह एक अद्भुत लोहमय पदार्थ है, जिसका निर्माण ऊष्णकटिबंधीय जलवायु सम्बन्धी एकान्तरण–अतिवर्षा– शुष्कवर्षा– अतिवर्षा – शुष्क काल के कारण कुछ विशेष चट्टानों के टूटने से होता है। ऐसी चट्टानों में बेसाल्ट प्रमुख है। यह सरन्ध्र, गर्तमय चिकनी मिट्टी के समान होती है। यह विविध रंगों की जैसे– लाल, पीली, भूरी तथा चितकबरी होती है। यह मुलायम तथा तीव्र धार के उपकरण से काटी जा सकती है।[10] लैटेराइट के निर्माण के लिए अति आर्द्र तथा अति ऊष्ण जलवायु का एकान्तरित रूप से होना आवश्यक है। प्राप्ति स्थान के आधार पर लैटेराइट को दो प्रमुख भागों उच्च स्तरीय एवं निम्न स्तरीय में विभाजित करते हैं। लैटेराइट के मोटे जमाव प्रायः 600–1500 मीटर ऊँची पहाड़ियों के ऊपर मिलते हैं। निम्न स्तरों पर भी लैटेराइट के जमाव मिलते हैं, परन्तु ये जमाव वास्तव में द्वितीयक होते हैं।

भारत में लैटेराइट जमाव बहुत विस्तृत क्षेत्र में मिलता है। यह दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में पहाड़ियों के ऊपर मिलता है। नर्मदा घाटी में लैटेराइट का आरम्भ प्रातिनूतन काल में हुआ था।[11] मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) में भी लैटेराइट विन्ध्य पहाड़ियों पर तथा नदी घाटियों में मिलते हैं।[12] पहाड़ियों के ऊपर तथा नीचे नालों के अनुभागों में इसके मोटे जमाव देखे जा सकते हैं।

बेलन एवं सोन नदियों के जमावों के निचले भाग में विशेषकर आधारभूत ग्रैवेल से पशुओं के बहुसंख्यक जीवाश्म मिले हैं। बेलनघाटी में लोंहदा नाले के तृतीय ग्रैवेल के अपरदित जमाव से हड्डी की बनी हुई मातृदेवी की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। बेलन घाटी के तृतीय ग्रैवेल से प्राप्त पशुओं के जीवाश्मों को उच्च प्रातिनूतन काल से लेकर प्रारम्भिक नूतन काल के बीच का माना जाता है।[13] यह काल उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति का काल था। बेलन घाटी से प्राप्त इन जीवाश्मों के अध्ययन से तत्कालीन जलवायु एवं पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा बेलन घाटी से कुछ लकड़ी के जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं[14], इनसे बेलन घाटी में प्रातिनूतन कालीन वनस्पतियों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुरातत्वविदों द्वारा सन् 1975–78 के बीच मध्य सोन घाटी में किए गए सर्वेक्षण के फलस्वरूप भूतात्विक जमावों से हजारों की संख्या में पशुओं के जीवाश्म मिले हैं।[15] बघोर जमाव (उच्च पुरापाषाणिक) से गौर (भैंसा), घोड़ा, गैंडा, हाथी, घड़ियाल तथा अन्य विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षियों के जीवाश्म मिले हैं। इनके द्वारा सोन घाटी के उच्च पुरापाषाणिक पुरापर्यावरण पर प्रकाश पड़ता है। इनके अध्ययन द्वारा तत्कालीन जीवन का पूर्वानुमान भली प्रकार से लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष

अब तक हुए अनुसंधानों के आधार पर यह पता चलता है कि प्रातिनूतन काल की वनस्पतियों में टुंड्रा एवं टैंगा प्रकार के पेड़–पौधों की प्रमुखता थी। सोन घाटी से प्राप्त बहुसंख्यक पत्तियों के जीवाश्मों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान काल की वनस्पतियों की तुलना में प्रातिनूतन काल में

वनस्पतियाँ अधिक थी। सोन घाटी से प्राप्त पत्तियों के जीवाश्म पुरापर्यावरण के अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। उत्तर मध्य भारत के इस भू–भाग की जलवायु तत्कालीन मानव के लिए अवश्य अनुकूल रही होगी, जहाँ पर उसके जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी होती रही होंगी। अनुकूल परिस्थितियों के कारण ही आदिमानव ने इस क्षेत्र को अपना निवास स्थान बनाया होगा। यहाँ पर उसे पत्थर के औजार, भोजन तथा पानी आसानी से उपलब्ध थे। जीव–जन्तुओं की अधिकता के कारण उसे शिकार आदि भी उपलब्ध हो जाया करते रहे होंगे। निवास के लिए उसने गुफाओं को चुना। इस क्षेत्र से मिलने वाली रॉक पेंटिंग से इस बारे में प्रकाश पड़ता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिस प्रकार हम ज्ञात वस्तु के माध्यम से अज्ञात वस्तुओं एवं सम्भावनाओं का अनुमान लगते हैं, उसी प्रकार इस क्षेत्र का विषम धरातल, गहरी नदी घाटियाँ, घने वन एवं वन्य प्राणी, प्रकृति की खुली गोद यहाँ की आदिम जातियों के लिए प्रागैतिहासिक काल से ही उपयुक्त परिवेश प्रस्तुत करते चले आ रहे हैं।

सन्दर्भ

1. जॉयनर, एफ.ई., 1959,द प्लाइस्टोसीन पीरियड, इट्स क्लाइमेट, क्रानोलॉजी एण्ड फौनल सक्सेसन, लन्दन, पृ. 19–20.
2. पेटरसॅन, टी.टी. एण्ड डी टेरा, 1939,स्टडीज ऑन दि आइस एज इन इण्डिया एण्ड एसोसिएटेड ह्यूमन कल्चर्स, कारनेजी इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन, पृ. 313.
3. लीके, एल.एस.बी., 1953,एडम्स एनसेस्टर, मेथुअन एण्ड कम्पनी, लन्दन, पृ. 20.
4. बर्किट, एम.सी. एण्ड एल.ए. कामियाडे, 1930, फ्रेश लाइट ऑन दि स्टोन एज इन साउथ–ईस्ट इण्डिया, एण्टीक्युटी–IV, पृ. 324.
5. पाण्डेय, जे.एन., 2002, पुरातत्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, पृ. 150–151.
6. पाण्डेय, जे.एन., 2002,पूर्वोक्त, पृ. 151.
7. अग्रवाल, डी.पी. एण्ड कुसुमगार, एस., 1974,प्रीहिस्टारिक क्रानोलॉजी एण्ड रेडियोकार्बन डेटिंग इन इण्डिया, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 71.
8. शर्मा, जी.आर. एण्ड क्लार्क, जे.डी., 1983,पैलियो इनवायरनमेण्ट एण्ड प्रीहिस्ट्री इन द मिडिल सोन वैली, अविनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 143–264.
9. कृष्णास्वामी, बी.डी. एवं सौन्दरराजन के.वी., 1951, द लिथिक टूल इण्डस्ट्रीज ऑफ द सिंगरौली बेसिन', एन्सिएण्ट इण्डिया, नं.–7, पृ. 40–65.
10. मजूमदार, डी.एन. एवं गोपालशरण, 1996, प्रागितिहास, लखनऊ, पृ. 123.
11. पेटरसॅन, टी.टी. एण्ड डी.टेरा, 1939, पूर्वोक्त, पृ. 313–14.
12. वर्मा, आर.के., 1964,स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मिर्जापुर, (अप्रकाशित थीसिस) इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ. 24–25.
13. पाण्डेय, जे.एन., 1992, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, पृ. 214.
14. पाल, जे.एन., 1994, इनवायरनमेण्टल चेन्ज एण्ड ह्यूमन एडाप्टेशन ड्यूरिंग दि क्वाटर्नरी पीरियड इन द विनध्याज, विश्व पुरातत्व परिषद के तीसरे सम्मेलन, नई दिल्ली में पढ़ा गया शोधपत्र.
15. वर्मा, आर.के. एण्ड पाल, जे.एन., 1980, द अपर पैलियोलिथिक कल्चर ऑफ द विन्ध्यन रीजन, इण्डियन प्रीहिस्ट्री : 1980, (सं. प्रो. वी.डी. मिश्र एवं पाल, जे.एन.) पृ. 94–102